सिरफिरे समुद्री केकड़ों में ज्वारीय लय

एम. के. चंद्रशेखरन

"अगर ज्वारीय लहरें 50 मिनट प्रतिदिन के हिसाब से आगे नहीं बढ़तीं तो मेरे ताज़े-ताज़े पकड़े हुए केकड़े अनियमित व्यवहार नहीं दिखाते और हो सकता था कि उनकी ज्वारीय लय को मैं काफी पहले खोज चुका होता।"

मेरा क्रोनो-बायोलोजिस्ट* बनना महज एक संयोग था; मैंने मद्रास में एक तरह के केकड़े *एमेरिटा एशियाटिका (Emerita Asiatica)* के तैरने की क्रिया और ऑक्सीजन की खपत के बीच ज्वार और भाटे की लय (Tidal Rhythm) को खोज निकाला। किताबें तो यही बताती हैं कि ये केकड़े हमेशा समुद्र के लहरों के बीच पानी की सतह से कुछ सेंटी मीटर नीचे रहा करते हैं। तार्किक रूप से यह तथ्य अजीब लगता है, क्योंकि प्रत्येक बारह घंटों में समुद्र का पानी डेढ़ से दो मीटर ऊंचा उठता है; इसे ज्वार आना कहते हैं। इसी तरह प्रत्येक बारह घंटों में समुद्र की लहरों में उतार (भाटा) आता है। यानी कि बारह घंटे के अंतराल पर आपको समुद्र में एक जैसी लहरें मिलेंगी।

इससे तो यही समझ में आता है कि अपने आप को पानी के कुछ सेन्टी मीटर नीचे लगातार बनाए रखने के लिए इन्हें लगातार अपनी जगह बदलते रहना पड़ता होगा।

* जीवों में मौसम, वातावरण आदि बाहरी कारकों व शरीर की अंदरूनी घटनाओं से जुड़ी लयों का अध्ययन करने वाले जीवविज्ञानी। इन लयों को 'जैविक घड़िया' कहते हैं।

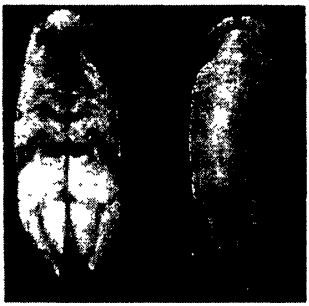

चित्र-1 : **सिरफिरा केकड़ा:** मादा एमेरिटा एशियाटिका केकड़े का निचला और पीठ की तरफ से लिया गया फोटो।

कैसी जगह थी

60 के दशक के शुरू में, मद्रास विश्वविद्यालय की प्राणीशास्त्र विभाग की शोध प्रयोगशाला एक सुन्दर इमारत में स्थित थी। यहां लगातार बहते हुए समुद्री पानी की व्यवस्था थी। इसके लिए यहां अलग से एक एक्वेरियम (ऐसी जगह जहां जलीय जीवों को रखने की व्यवस्था होती है) इमारत थी, जिसमें पानी के विशाल टैंक बने हुए थे। इन टैंकों के एक तरफ मोटा कांच लगा हुआ था और इनमें समुद्र का पानी भरा होता था। उस समय प्रोफेसर ज्ञानमुत्तु इसके निदेशक थे और प्रयोगशाला को काफी कड़े अनुशासन में रखते थे। विभाग के लोग व शोध छात्र उनसे काफी घबराए हुए रहते थे। वैसे प्रोफेसर युवाओं को चाहते भी थे, लेकिन अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के मामले में वे काफी शर्मीले थे। स्नातकोत्तर कक्षाओं को पढ़ाना उन्हें अच्छा लगता था और इसके लिए वे काफी मेहनत भी करते थे। वे विशुद्ध अंग्रेज़ी बोलते व लिखते थे। वैसे वे काफी विनोदप्रिय भी थे।

उन दिनों शोध छात्र बनना और पी. एच. डी. के लिए दाखिला मिलना खासा मुश्किल था। स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं के सिर्फ ऐसे छात्र ही सफल हो पाते थे जो प्रथम श्रेणी में पास हुए हों। उस समय यू.जी.सी. (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग) द्वारा सिर्फ एक ही छात्रवृत्ति दी जाती थी और इसे भी ज़्यादातर दक्षिण भारतीय ही ले जाते थे।

हम में से शायद ही किसी को यह मालूम होता था कि शोध की उपाधि मिलने के बाद आखिर हम क्या करने वाले हैं। कुल मिलाकर पी. एच. डी. का पूरा कारोबार ही बेहद साहस का काम था। शोध की तीन प्रतियां विदेशी (ज़्यादातर अंग्रेज़) परीक्षकों को भेजी जाती थीं। इनमें से अधिकतर लोग रॉयल सोसायटी के सदस्य होते थे। परीक्षकों को प्रायः इस बात की कोई खास जानकारी नहीं होती थी कि किन-किन दिक्कतों के बीच यह शोध किया गया है। वे शोध की काफी कड़ी समीक्षा करते थे – खासतौर पर कार्यपद्धति (Methodology) से जुड़े हुए मसलों की। तकरीबन 50 फीसदी

थीसिस (शोध निबंध) तो अस्वीकार कर दी जाती थीं; हालांकि उनमें से कुछ को ज़रूरी बदलावों के बाद दोबारा जमा करने को कहा जाता था। आमतौर पर इस पूरी प्रक्रिया में सालभर लग जाता था – इस बीच वह विद्यार्थी वहां से जा चुका होता था और उसकी थीसिस प्रयोगशाला में पड़ी रहती धूल चाटती रहती।

शोध की शुरुआत

चलिए वहीं लौटते हैं जहां से किस्सा शुरू किया था। 1946 से 1963 के बीच प्रोफेसर ज्ञानमुत्तु के निदेशक रहते कोई भी विद्यार्थी अपने शोध के विषय का चुनाव खुद करने के लिए स्वतंत्र नहीं था, बल्कि शोध करने के लिए विषय उन्हें दिया जाता था। यहां तक कि स्नातकोत्तर छात्र को तो अपने लिए विषय का सुझाव देने के लिए भी अनुपयुक्त समझा जाता था। इसी तरह यह भी संयोगवश ही तय होता कि शोध के लिए आपको विभाग के किस व्यक्ति के अधीन काम करना होगा; और मेरी किस्मत थी कि मैं जा पहुंचा प्रोफेसर ज्ञानमुत्तु के पास।

मुझे फरमान जारी हुआ – उष्ण-कटिबंधीय पोइकिलोथर्म्स (Tropical Poikilotherm) के बेसल मेटाबोलिज़्म* (Basal Metabolism) का अध्ययन करने का। 'पोइकिलोथर्म्स' यानी स्तनधारियों और पक्षियों को छोड़कर अन्य सब जीव।

1960 में जब मैंने अपना शोध कार्य शुरू किया तब तक यह साफ हो चुका था कि पोइकिलोथर्म्स में बेसल मेटाबोलिज़्म जैसा कुछ भी नहीं होता। इंसानों में बेसल मेटाबोलिज़्म को मापने के लिए तो स्थितियां तय हैं – ऑक्सीजन की खपत मापने से आठ घंटे पहले हल्का नाश्ता, आरामदायक मुद्रा और धीमा-धीमा संगीत। पर केकड़ों पर मैं यह स्थितियां कैसे लागू कर सकता था? (!)

एक सिरफिरा केकड़ा

अपनी शोध के सिलसिले में मैंने कई जीवों का परीक्षण किया। उनमें *एमेरिटा एशियाटिका* केकड़े भी शामिल थे। यह संपूर्णतः जलीय जीव है। मैं रोज़ सुबह नौ बजे के आसपास एक्वेरियम बिल्डिंग में बनी प्रयोगशाला में पहुंच जाता। यहां मेरे पास कई श्वसन मापी यंत्र थे। ये सब एक लाइन में लगे हुए थे। इनमें चौड़े मुंह के कांच के जार का एक श्वसन चैम्बर बना हुआ था। मोल केकड़े को इसी चैम्बर में रखा गया था। इन्हें बाहर से देखा जा सकता था। किसी सुबह तो ये केकड़े यहां-वहां डोल रहे होते तो किसी सुबह चुपचाप पड़े रहते।

* न्यूनतम आवश्यक श्वसन दर या ऑक्सीजन खपत।

लेखक और निदेशक: डॉ सी पी ज्ञानमुत्तु और लेखक (जो उस समय शोधकर्ता थे) का 1964 में खींचा गया फोटो।

दरअसल हम जार में से उस समय पानी का सैम्पल लेना चाहते थे जबकि ये केकड़े चुपचाप पड़े हों यानी अक्रियाशील हों। चूंकि संदेह था कि तफ्तीशकर्ता की हरकतें केकड़े को प्रभावित कर सकती हैं इसलिए जार को काला पोत दिया गया था। ज़ाहिर था कि अब मैं केकड़ों की गतिविधियों पर नज़र नहीं रख सकता था।

इस उलझन को सुलझाने के लिए मैंने एक एक्टोग्राफ का निर्माण किया (देखिए चित्र 2)। अब इसकी सहायता से मैं केकड़ों की तैरने की गतिविधि के साथ उनकी ऑक्सीजन की खपत को भी लगातार रिकॉर्ड कर सकता था। डॉ. एम. जे. वेल्स इस उपकरण से काफी प्रभावित हुए। ये रिकॉर्डिंग एक यंत्र (Kymograph) पर ग्राफ के रूप में होतीं थीं। इस यंत्र का सबसे धीमा गियर छह घंटे में एक चक्कर पूरा करता था। इसके लिए हमने ड्रम को छह घंटे के अंतराल पर विभिन्न हिस्सों में बांट दिया था – सुबह 6 बजे, दोपहर 12 बजे शाम को 6 बजे व रात को 12 बजे। प्रत्येक 24 घंटे के बाद एक नया ड्रम लगाया जाता था।

मैं यकीनन नहीं कह सकता कि इस लेख की घटनाओं को मैं जिस तरह पेश कर रहा हूं वे बिल्कुल उसी तरह घटी थीं। पर मैंने यह किस्सा स्नातकोत्तर और एम. फिल. के नए विद्यार्थियों को साल-दर-साल सुनाया है, और अब मुझे विश्वास हो चला है कि पैंतीस साल पहले कुछ इसी तरह से घटी थीं ये घटनाएं। लेकिन फिर भी जैसा फ्रांसिस बेकन* ने कहा था, "कोई भी जानकारी कभी भी उस क्रम में नहीं बताई गई, जिस तरह उसकी खोज हुई होगी।"

एक सोमवार की रात नौ बजे मैं काम करने के इरादे से एक्वेरियम पहुंचा। चूंकि यह बात मायने रखती है कि वो दिन कौन-सा था इसीलिए मैंने उसका उल्लेख किया है। वह अमावस की रात थी, चारों तरफ घुप्प अंधेरा था। मैंने एक्वेरियम की बत्ती जलाई। प्रयोगशाला में उस वक्त समुद्री

* 17 वीं सदी में हुए अंग्रेज़ दर्शनशास्त्री और निबंधकार।

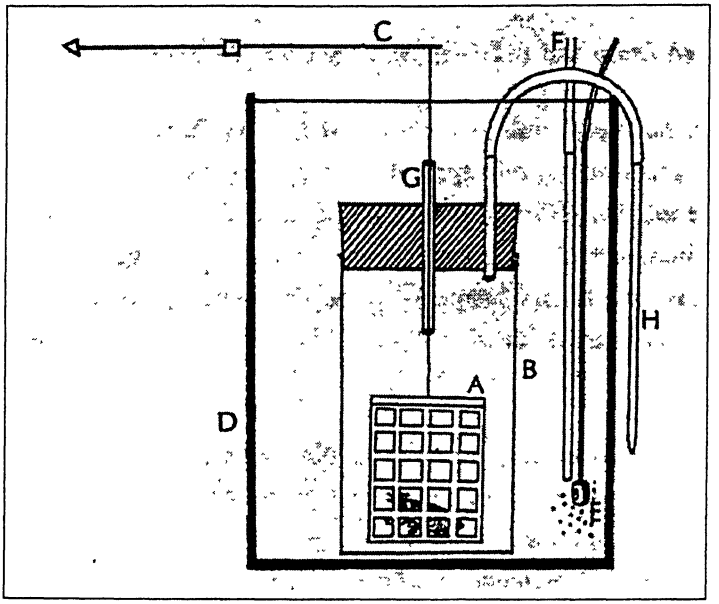

चित्र-2· एक्टोग्राफ. केकडों की गतिविधि पर लगातार निगाह रखने के लिए बना एक सरल-सा पिंजरा। इसमें समुद्र के पानी का प्रवाह लगातार बना रहता है ताकि केकड़ों की ऑक्सीजन खपत को लगातार मापा जा सके। A. पिंजरा B. जंतु कक्ष C. मार्किंग लीवर D. बड़ा बर्तन जिसमें पानी का तल हमेशा एक-सा बना रहता है G. पानी अंदर आने का रास्ता H. पानी बाहर निकलने का रास्ता। जब केकड़ा तैरना शुरू करता है तो वो गतिविधि कक्ष के तल को छोड देता है। जिससे यह पिंजरा जंतु कक्ष में ऊपर की ओर उठ जाता है। इस तरह जब भी केकड़ा एक्टिव हो अर्थात तैर रहा हो तो गतिविधि कक्ष के साथ जुडे मार्किंग लीवर की वजह से ये हलन चलन खुद-ब-खुद पिन की सहायता से कीमोग्राफ पर रिकॉर्ड हो जाता है।

पानी से भरे हुए 20 बर्तन रखे थे। प्रत्येक का व्यास करीब 30 सें. मी. था; उनमें 4-5 सें.मी. की ऊंचाई तक पानी भरा था और प्रत्येक बर्तन में 20-20 मादा केकड़े पड़े हुए थे। इन केकड़ों का पीछे की ओर चलने और खुद को समुद्र तट की रेत में दबा लेने का तरीका काफी विशिष्ट और मोहक है। पीछे की ओर चलते समय केकड़ों का मुंह हमेशा समुद्र की ओर रहता है। प्रयोगशाला मे रखे पानी के बर्तनों में भी वे उसी तरह पीछे की ओर तैरते थे जिससे उनका मटमैले रंग का निचला हिस्सा अनावृत हो जाता था। तो उस वक्त मेरे चारों ओर 400 केकड़े बर्तनों में तैर रहे थे – इस घटना को मैंने तुरंत दर्ज कर लिया, केकड़ों पर 'बत्ती के जलने

का प्रभाव' नाम से। उनकी यह गतिविधि जारी रही और थोड़ी देर के बाद मंद पड़ गई। मैंने सोचा कि शायद यह उनके 'एक तरह से वातावरण के आदी होने' का संकेत है; मुझे याद नहीं पड़ता कि उस रात मैंने इस घटना को और ज़्यादा तवज्जो दी हो। लेकिन मुझे यह ज़रूर याद है कि मैंने अपने दोस्तों को इस 'जलती बत्ती' वाले प्रभाव के बारे में बताया था। लेकिन उनमें से कोई भी इतना उत्तेजित नहीं हुआ कि इस घटना को देखने की गुज़ारिश करता – कम-से-कम अगले सोमवार तक तो नहीं। उस दिन मुझसे सहानुभूति रखने वाले मेरे एक साथी ने इस दर्शनीय दृश्य को देखने के लिए मेरे सात रात गज़ारने की इच्छा ज़ाहिर की। रात के नौ बजे हम एक्वेरियम इमारत में पहुंचे, दरवाज़ा खोला और दबे पांव अंदर घुसे – मैंने बत्ती जलाई। हर बर्तन में 20 केकड़े थे, लेकिन एक केकड़ा भी अपनी जगह से टस्स-से-मस्स नहीं हुआ। आप मेरी बौखलाहट की बस कल्पना ही कर सकते हैं। यह जानने के लिए वे ज़िंदा हैं या नहीं मैंने कई केकड़ों को पेंसिल से छुआ। केकड़े कुछ व्याकुल हुए, हड़बड़ी में कुछ से.मी. चले और फिर रुक गए। थे न वे केकड़े बिल्कुल सिरफिरे!

किस्से के इस मोड़ पर मैं अपने विद्यार्थियों से पूछता हूं कि क्या वे अंदाज़ा लगा सकते हैं कि ऐसा क्यों हुआ होगा। और यह भी हो सकता था कि अपने शोध के इस मोड़ पर मैं चिल्ला रहा होता 'यूरेका, यूरेका. . .'। लेकिन मैं उस स्थिति का शिकार हो गया था जिसे लुईस पाश्चर ने कुछ यूं बयान किया है, "अवलोकन के क्षेत्र में संयोग केवल उन्हीं दिमागों का साथ देता है जिनकी खुद की तैयारी होती है।" और मेरा दिमाग तो न सिर्फ तैयार ही नहीं था बल्कि ज्वारीय लय जैसी परिकथा की पुनर्खोज के खिलाफ भी था।

साठ के दशक में वैज्ञानिक किसी भी तरह की जैविक लय (Biological Rhythm) को लेकर सशंकित थे। लेकिन सौभाग्वश मेरे पास थी केकड़ों की कहानी जो उन्होंने खुद कीमोग्राफ पर अंकित की थी (चित्र-3)। इस कहानी को काफी सहेज कर रखा गया था लेकिन चूंकि मैंने आंकड़ों का विश्लेषण नहीं किया था इसलिए उस वक्त मुझे मालूम नहीं था कि ये केकड़े आखिर क्या कहना चाह रहे थे।

ज्वारीय लय आखिरकार!

सारी की सारी तस्वीर करीब अठारह महीने बाद साफ हुई जब मैंने केकड़ों की गतिविधियों के रिकॉर्ड के समय के अक्ष पर स्तंभालेख बनाए – और आकार लेने लगी उतार चढ़ाव की एक नियमित लय; यह लय पूरे

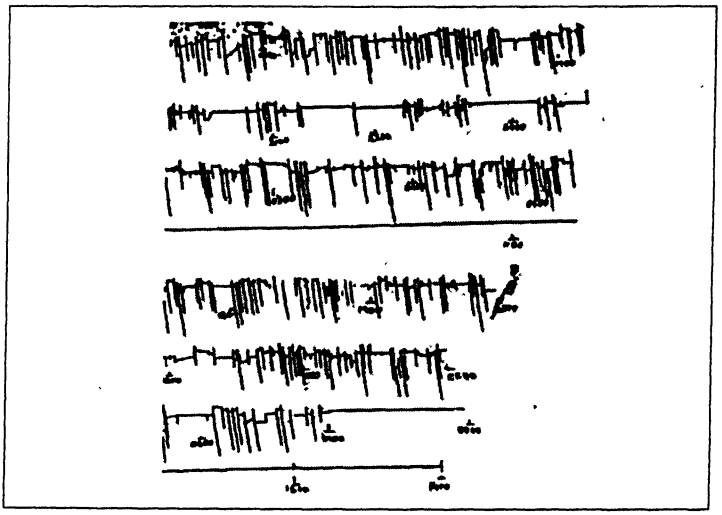

चित्र-3: कीमोग्राफ पर दर्ज रेखाएं; इनमें खड़ी ऊपर नीचे जाती हुई रेखाएं तैरने के दौरान केकड़ों की गतिविधि को दर्शाती हैं और सीधी क्षैतिज रेखाएं केकड़ों की अक्रियाशील स्थिति को दर्शाती हैं।

प्रयोग के दौरान कायम रही। चढ़ावों के बीच करीब 12 घंटे का अंतराल था। उतार के दौरान करीब दो से तीन घंटों तक केकड़े बिल्कुल चुपचाप पड़े रहते थे। क्या यही थी 'ज्वारीय लयबद्धता

उस समय रात के दो बज रहे थे और प्रयोगशाला में कोई भी नहीं था। यह तो और भी बुरा था कि हमारे पास भारतीय भूगणितीय विभाग द्वारा प्रकाशित 'ज्वार-भाटा तालिकाएं' नहीं थीं। ये तालिकाएं विभिन्न जगहों पर आने वाले ज्वार के चढ़ाव और उतार के समय और साथ-ही-साथ ज्वार की ऊंचाई की विस्तृत जानकारी देती हैं। अगले दिन सबसे पहले मैंने 'ज्वार-भाटा तालिकाएं' खरीदी और प्रयोगशाला पहुंच गया। फिर मैंने आंकड़ों के आधार पर ज्वार के ग्राफ बनाए और धड़धड़ाता हुआ प्रोफेसर ज्ञानमुत्तु के कमरे में घुस गया, 'सर, *एमेरिटा* की सक्रियता में ज्वारीय और दैनिक लय है,'' या फिर ऐसा ही कुछ और बोल दिया। मेरे साथ प्रोफेसर भी खुशी से झूम उठे और उन्होंने मुझे एक अच्छे शोध कार्य के लिए बधाई दी।

अब बात करते हैं केकड़ों के सनकी व्यवहार की, पहले सोमवार तो खूब

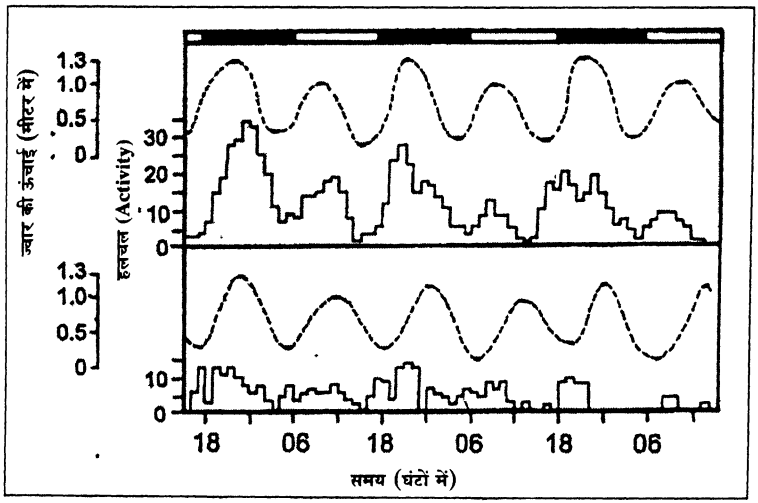

चित्र-1: प्रयोगशाला की लगातार एक-सी परिस्थिति में केकड़ों की सक्रियता में मिली ज्वारीय लयबद्धता (Tidal rhythm)। छह दिनों में यह धीरे-धीरे कम होती दिखाई दे रही है। ग्राफ के ऊपर बनी पट्टी में काले भरे हुए हिस्से बाहर के वातावरण में रात की स्थिति को दिखाते हैं।

उछलकूद कर रहे थे, और दूसरे सोमवार पेंसिल छुआने पर भी नहीं उठ रहे थे। केकड़ों में ज्वारीय लय की खोज के बाद अब मैं यकीनन कह सकता हूं कि पहले सोमवार को रात नौ बजे प्रयोगशाला से दो किलोमीटर दूर समुद्र में ज्वार चढ़ाव पर था।

चूंकि चंद्रमा रोज़ 50 मिनट देरी से उगता है और चंद्र दिन 24.8 घंटो का होता है इसलिए हर दिन ज्वार 50 मिनट आगे बढ़ गया होगा। यानी अगले सात दिनों के दौरान 7×50 = 350 मिनट; यानी अंगले सोमवार तक करीब छह घंटे आगे। इसका सीधा-सा मतलब है कि उस दिन मद्रास के समुद्र में लहरें उतार पर थीं। तो केकड़े दोनो सोमवारों को प्रयोगशाला में क्रमशः लहरों के चढ़ाव (अधिक क्रियाशील रहकर) और उतार (बिल्कुल चुपचाप रहकर) की स्थिति को प्रदर्शित कर रहे थे। प्रयोगशाला में लगातार एक सी स्थिति में रहने के कारण केकड़ों में ज्वारीय लय धीरे-धीरे कम होते हुए 8-10 दिनों में गायब हो जाती है।

अपने शोध निबंध और पहले प्रकाशित पर्चे में मैंने सर्केडियन[1] (circadian) शब्द का इस्तेमाल नहीं किया

क्योंकि यह शब्द तब नया-नया ही था और इसका इस्तेमाल भी कम किया जाता था। बाद में एक दिन अकेले में प्रोफेसर ज्ञानमुत्तु ने मुझसे कहा, "यह तुम्हारे और मेरे बीच की बात है, मुझे बिल्कुल भी विश्वास नहीं है कि इनमें कोई लयबद्धता है।" तो यह वजह थी कि मेरे पहले पर्चे का लेखक सिर्फ एक ही था। इसके बाद तुरंत मैंने अपने कीमोग्राफ की एक कॉपी प्रोफेसर इरविन ब्यूनिंग (1906-1990) को भेजी, यह लिखते हुए कि यहां भारत में कोई भी केकड़ों के सिलसिले में मेरी बात मानने को तैयार नहीं है। क्रोनोबायोलोजी का यह पहला इतिहासकार समझ गया कि मैं किन मुसीबतों का सामना कर रहा हूं; उन्होंने तुरंत जवाब दिया, "ट्यूबिनगन चले आओ।" आगे की दास्तान, जैसा कि सब कहते हैं, इतिहास है।

यह बिल्कुल सही है कि अगर ज्वारीय लहरें 50 मिनट प्रतिदिन के हिसाब से आगे नहीं बढ़तीं तो मेरे ताज़े-ताज़े पकड़े हुए केकड़े अनियमित

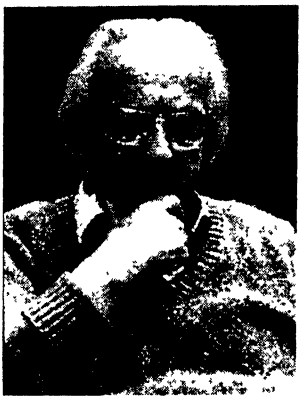

प्रोफेसर इरविन ब्यूनिग (1906–1990)

व्यवहार नहीं दिखाते और हो सकता था कि ज्वारीय लय की पुनर्खोज मैं काफी पहले कर चुका होता। वैसे रिकॉर्ड के लिए बता दूं कि ज्वारीय लय की सबसे पहली खोज चपटे कृमि (Turbellaria) के व्यवहार में हुई थी। इसे सन् 1904 में सी. बोन नाम के विज्ञानी ने खोजा था।

वैसे इस दास्तान से एक नैतिक शिक्षा भी मिलती है : अगर आप नौ बजे से पांच बजे तक काम करते हैं तो आप कोई भी लय नहीं खोज सकते!

एम के चद्रशेखरन – पेड़-पौधों, फ्रूट-फ्लाई, केकडो, चमगादड़ों, गिलहरियो और इसानों में जैविक लयों की खोज मे शोधरत। बंगलौर स्थित जवाहरलाल नेहरू सेंटर फॉर एडवांस साइटिफिक रिसर्च में कार्यरत। मूल आलेख अंग्रेज़ी में। **अनुवाद:** शशि सबलोक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित साइंस और टेक्नोलॉजी फीचर सर्विस 'स्रोत' में कार्यरत।

यह लेख इंडियन एकेडमी ऑफ साइंसेज, बंगलौर द्वारा प्रकाशित पत्रिका *'रेसोनेन्स'* के जुलाई 1996 के अंक से साभार लिया गया है।

'सर्केडियन' जंतुओं में छिपी जैविक लयबद्धता।